इक्कीसवीं सदी के प्रमुख हिन्दी उपन्यास
(स्त्रियों की स्थिति एवं समस्याओं का अवलोकन)

वीरेन्द्र कुमार*

उपन्यासकार आज के समाज को प्रगतिवादी नजरिये से देखता है और समाज में व्याप्त विभिन्न प्रकार की समस्याओं की गहनता से जाँच पड़ताल करता है। इस क्रम में समस्याओं को निरूपित करने के साथ–साथ उनके कारणों पर भी विचार किया गया है समस्याओं को व्यावहारिक रूप में प्रस्तुत किया गया है। समस्याएँ चाहे स्त्री जीवन से सम्बन्धित हो, चाहे दलितों से जुड़ी हो या फिर आदिवासियों से जुड़ी हो, सुविधा की दृष्टि से इन उपन्यासों में प्रस्तुत किया जा सकता है।

भारत की सामाजिक व्यवस्था में आये परिवर्तन में नारी व्यक्तित्व ने विकास के आधार को बदला है। यद्यपि पारिवारिक दृष्ट्रि से आज भी नारी परिवार का केन्द्र बिन्दु है परन्तु आजादी के पश्चात् बदलता हुआ परिवेश राष्ट्र की त्रासदी विभाजन विस्थापन तथा आर्थिक व्यवस्था के बदलाव से उपजी सामाजिक स्थिति में नारी की सामाजिक स्थिति पर सर्वाधिक प्रभाव डाला है, नैतिकता का प्रश्न मूल्यहीनता, यौन शुचिता, लैंगिक विभेद, शिक्षा का प्रश्न आदि ऐसे बिन्दु रहे हैं जिनमें आए परिवर्तनों ने परम्परागत रूप से रूढ़ियों एवं वर्जनाओं से घिरी नारी को अपराध बोध एवं पाप बोध से मुक्ति दिलाई।

यहाँ पर धार्मिक संकीर्णता के बन्धन ढीले पड़ने से नारी में नई चेतना का विकास हुआ। शिक्षा ने उसके व्यक्तित्व में आमूल–चूल परिवर्तन करके उसे बाहर की दुनिया दिखयी साथ ही शहरीकरण और औद्योगीकरण ने उसे आगे बढ़ने का विश्वास दिया। आर्थिक क्षेत्र में मिलने वाली आत्मनिर्भरता में नारी को समाज में अपनी पहचान बनाने की शक्ति और अवसर दिया है। इक्कीसवीं सदी के प्रमुख हिन्दी उपन्यासों में स्त्री की स्वाधीनता और आशापूर्ण भविष्य की ओर बढ़ते चरण को सकारात्मक ढंग से प्रस्तुत किया गया।

उपन्यास कृतिकार संवेदनशील प्राणी होता है वह अन्याय को देखकर चुप नहीं रह पाता है और जहाँ कहीं वह टूट–फूट देखता है, विचलित हो जाता है। समाज में स्त्री जीवन में दिखाई पड़ने वाला अनाचार और शोषण साहित्यकारों के मन को लगातार बेचैन करता रहता है। इसका परिणाम है कि साहित्य में स्त्री समस्याओं के समाधान का स्वर अधिक मुखर रहा है, विशेषकर उपन्यास साहित्य में, उपन्यासकारों ने स्त्री की सामाजिक स्थिति, उसकी आकांक्षा, समान अधिकार और व्यक्ति स्वतन्त्रता के मुद्दों को अधिक प्रखर ढंग से उठाया है। स्त्री समस्याओं के क्रम में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण समस्या है विवाह की व्यवस्था से जुड़े हुए विभिन्न मानक और विधान उपन्यासों में जहाँ एक ओर इस समस्या को चित्रित किया है वही यह भी दिखाया गया है कि किस तरह से विवाह व्यवस्था के प्रति सामाजिक धारणाओं में परिवर्तन हो रहा है। उपन्यासकारों ने विवाह के सन्दर्भ में विभिन्न प्रकार से विचार किया है, उसके विभिन्न आयामों को देखा व परखा है एवं उसके परिणामों को सोचा समझा है इस सन्दर्भ में **डॉ0 शील प्रभा वर्मा** का कथन द्रष्टव्य है– ''विवाह सम्बन्धी दृष्ट्रिकोण को अब बदलने वाला है और आज की नारी यह कहने में कोई संकोच का अनुभव नहीं करती कि जीवन में विवाह मात्र ही महत्त्वपूर्ण नहीं है, दूसरे देशों में नवयुवतियाँ अविवाहित रहकर ही सुखमय जीवन व्यतीत कर रही है। आज युवती यह भी समझने लग गई है कि सिर्फ जिस्म से ही विवाह करना, बिना इच्छा के विवाह करना अथवा पति को ही शरीर समर्पण करना अमानवीय है। वैवाहिक जीवन में विवाह बोध भी एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व होता है जिसके अभाव में कोई विवाह असफल हो जाता है। अनमेल विवाह के सम्बन्ध में महिला लेखिकाओं ने यह निष्कर्ष निकाला है कि ऐसे, विवाह असफल ही होते हैं। वैभिन्न चाहे मानसिक हो, चाहे वय सम्बन्धी, चाहे आर्थिक हो वह किसी दृष्टि में उचित नहीं है। अर्न्तजातीय विवाह के सन्दर्भ में जहाँ **शिवानी, ममता कालिया, कृष्णा अग्निहोत्री** आदि ने सफलता की मुहर लगाई है, वही कई लेखिकाओं ने असफल भी सिद्ध किया है। पुनर्विवाह के सम्बन्ध में प्रायः सभी लेखिकाएँ एकमत हैं और उसकी आवश्यकता पर बल दे रही है।''[1]

* **शोध–छात्र, हिन्दी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ**

स्त्री के विवाह सम्बन्धी प्रगतिशील दृष्ट्रिकोण को मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास 'विजन' में आशा दी और नेहा के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। आभा दी विवाह बन्धन को परम्परावादी मानकर ठुकरा देती है और खुद के व्यक्तित्व को निखारकर नेहा को भी समझाती है– ''अपनी उस माँ, जिसने तुम्हें अभाव झेलकर मुश्किलें सहकर कई विरोधों को पार करके पढ़ाया लिखाया उस माँ को तीन नाम– **रसोईदारिन, धोबिन, मोचिन,** देकर अपने राजमहल को लौट जाओ। वह भी तुम जैसी बेहया और अहसान फरामोश लड़की से मुक्ति पाये**। सेम टू यू। शेमफुल टू अस'** आभा दी ने कहा।''[2]

इस उपन्यास में रूढ़ियों और परम्पराओं का खण्डन किया गया है, और वह नेहा को भी आत्मनिर्भर बनने की प्रेरणा देती है। यद्यपि नेहा कठोर निर्णय नहीं ले पाती है परन्तु जब वह डॉक्टर बन जाती है और उससे विवाह के लिए **डॉ0 शरण बिना** एक भी पैसा दहेज लिए तैयार हो जाता है तो वह अपनी माँ से इतना तो कहती ही है कि मुझे यह विवाह पसन्द नहीं है। उससे विवाह करके उस परिवार को बहू नहीं बल्कि एक कमाऊ डॉक्टर मिलने की उम्मीद है– ''मत करो मुझसे कोई आशा। मैं सब समझती हूँ वे चालाक लोग है। अपने चंगुल में लेना चाहते हैं नहीं तो उनके बेटे के लिए एक मामूली लड़की, वह भी दूसरे शहर की मरवाने या बहकाने की अनेक तरकीबे हैं। मैं तरकीबों में नहीं फसूँगी।''[3]

वर्तमान समय में शिक्षा के प्रचार प्रसार से प्राचीन रूढ़ियाँ एवं परम्पराओं की पकड़ ढीली पड़ी गयी है। आर्थिक आत्मनिर्भरता नारी जागृति एवं नारी मुक्ति आन्दोलन के फलस्वरूप अपने अस्तित्व की पहचान आदि कारणों से नारी स्वतन्त्र जीवन को अपना रही है। उसके द्वारा वे परम्परागत मूल्य नकारे जा रहे हैं। जिन्होंने उसके सामाजिक जीवन को जड़ बना दिया है। आज की स्त्री आत्मसजगता एवं आत्मचेतना, से युक्त होने का प्रयास कर रही है, जिसमें किसी सीमा तक उसे सफलता भी प्राप्त हो रही है, इस सम्बन्ध में **डॉ0 सरोजिनी प्रीतम** का मत है कि ''नारी की जड़ता तब तक नहीं टूटती जब तक वह स्वयं विद्रोह नहीं करती, न्याय की माँग नही करती उसे पाँव तले वह जमीन चाहिए जो ठोस हो समाज में वह अपने दृढ़ पाँवों पर खड़े होकर अपने अस्तित्व की रक्षा करें, उसे सुरक्षित स्थितियों का अहसास हो। सुरक्षित स्थितियों में ही आत्मविश्वास उत्पन्न होता है। अपने प्रति स्वयं उत्तरदायी होने का गौरव और सर ऊँचा करके आकाश छू लेने का एहसास होता है। उत्साह यदि हर खास में आ समाए तो जड़ता का अन्धकार दूर हो सकता है।''[4]

नारी के संघर्षशील और विद्रोही व्यक्तित्व को उभारने की दृष्टि से **'आवाँ' 'विजन', 'कस्तूरी कुण्डल बसै', 'अगनपाखी', 'अल्मा कबूतरी', 'कथासतीसर', 'रेत', 'सेज पर संस्कृत', 'आज बाजार बन्द है', 'सुक्खम्–दुक्खम', 'मिलजुल मन'** आदि उपन्यासों की विषय वस्तु को देखा जा सकता है, इन उपन्यासों में आज की नारी के प्रगतिशील व्यक्तित्व और समाज में अपनी पहचान बनाने के संघर्ष को सकारात्मक रूप में चित्रित किया गया है, इन उपन्यासों में अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व में एक जुझारु स्त्री को प्रस्तुत किया है जो सर झुकाकर उपदेश सुनने वाली नहीं है बल्कि अपने लिए विकास का मार्ग चुनने वाली है। स्त्रियाँ उन क्षेत्रों में अपनी पहचान स्थापित करने का प्रयास करती दिखाई गई है जो क्षेत्र पुरुषों को एकाधिकार में माने जाते थे। वे आर्थिक सामाजिक आदि सभी क्षेत्रों में अपनी प्रतिभा, प्रज्ञा एवं क्षमता को सिद्ध करती दिखाई गयी हैं। **'आवाँ'** उपन्यास में कुमारी विमला बेन महान समाज सेविका, स्त्री उद्धारिका और पूर्व एम0एल0ए0 के रूप में चित्रित की गई है।

मैडम अंजना वासवानी एक सफल पूँजीपति और व्यवसायी के रूप में दिखाई गई है। **'अल्मा कबूतरी'** में अल्मा को अपनी प्रतिभा के बल पर मंत्री पद की संभावित दावेदार बनते हुए दिखाया गया है। 'रेत' उपन्यास में रोहिणी अत्यन्त निम्नवर्गीय पारिवारिक स्थिति से प्रगति करते हुए राज्यमंत्री बनती है। 'सुरंग में सुबह' की अंजली और नंदिता अलग–अलग राजनीतिक दलों की महत्त्वपूर्ण नेत्री है इस प्रकार महिलाओं को वर्तमान समाज में विभिन्न स्तरों पर सफलतापूर्वक संघर्ष करते हुए और स्वयं को सम्मानपूर्वक स्थापित होते हुए दिखाया गया है।

सामाजिक रीति–रिवाजों के क्षेत्र में भी स्त्री प्रगतिशील विचारों के साथ संघर्ष पथ पर अग्रसर हो रही है, आवाँ उपन्यास में मजदूर नेता देवीशंकर पाण्डेय की मृत्यु पर उनकी पुत्री नमिता शव का दाह–संस्कार करती है। इसी प्रकार स्त्री के लिए शवयात्रा में सम्मिलित होना या अर्थी को कन्धा देना शास्त्र सम्मत नहीं है लेकिन इस रुढ़ि को विमल बेन तोड़ देती है। सुनन्दा की अर्थी को विमला बेन

कंधा देती है। 'सौभाग्यवती भव' उपन्यास में नारी सशक्तीकरण को वर्ण्य विषय बनाकर स्त्री द्वारा सामाजिक अधिकारों को प्राप्त करने की संघर्ष कथा प्रस्तुत की गई है। सरोज और भाभी–दो नारी पात्रों के माध्यम से विभिन्न सामाजिक रूढ़ियों को साहसपूर्वक नकारने और समाज में अनेकानेक विरोधों का सामना करते हुए अपनी स्वतन्त्र पहचान बनाने के प्रसंग नारी सशक्तीकरण की दृष्ट्रि से बड़े प्रेरणादायी है।

विधवा सरोज की बुआ उसके हाथों की चूड़ियों को तोड़ना चाहती है परन्तु भाभी अत्यन्त दृढ़तापूर्वक उनके इस कृत्य पर न केवल विरोध करती है बल्कि पूरे समाज की परवाह किये बिना इस रिवाज को मानने से इनकार कर देती है और दृढ़तापूर्वक कहती है– 'हाँ, इसके लिए नया रिवाज बनाऊँगी। अरे, वो तो चला गया सब कुछ छोड़कर। पा गया सारे दुःखों से छुटकारा, पर इसके आगे सारी जिंदगी पड़ी है। बच्चों को पालना है। ये चूड़ियाँ भी पहनेगी, बिंदी भी लगाएगी और जिंदा रहने की कोशिश भी करेगी।''[5]

सरोज परिवार के विरोध के बावजूद भी शिक्षा प्राप्त करती है और गर्व से स्कूल में नौकरी करती है। उसकी बड़ी बेटी विन्नी की शादी तय होने पर फिर एकाएक सामाजिक रीति रिवाज उसके आड़े आने लगते हैं। उसे बताया जाता है कि वह विधवा है, अपशकुनी है। अतः किसी धार्मिक कार्यक्रम में उसकी उपस्थिति उचित नहीं है। परन्तु विरोधों के बावजूद भी वह विवाह की सभी रस्मों में न केवल भाग लेती है बल्कि पिता द्वारा सम्पन्न होने वाली सभी रीतियों का सम्पादन भी करती है। वह स्पष्ट रूप से घोषित कर देती है– ''अगर किसी को मेरे फैसले पर एतराज है तो शौक से अपने घर वापस लौट जाए। मैं परवाह नही करती किसी का।''[6]

'सौभाग्यवती भव' उपन्यास में स्त्रियों से सम्बन्धित व्रतों उपवासों को भी नकारा गया है। सरोज जब तक सौभाग्यवती थी छठ व्रत करवाचौथ आदि सभी को बड़े ही विधि विधान से और आस्थापूर्वक निभाती थी परन्तु इतने पर भी जब वह विधवा हो जाती है तो उसकी आस्था खण्डित हो जाती है। वह सोचती है कि– ''कोई भी आशीर्वाद उसके सुहाग को अटल नहीं बना सका .... न कोई चन्दनछठ, सूरज या करवाचौथ का व्रत। इसलिए सरोज ने अपनी लड़कियों से कोई भी व्रत नहीं करवाया। क्या फायदा? और कभी किसी पुरुष ने अपनी पत्नी की लम्बी आयु के लिए कोई ब्रत रखा है तो फिर औरत ही क्यों?[7]

नारी विमर्श से सम्बन्धित 'सौभाग्यवती भव' उपन्यास में यह भी चित्रित किया गया है कि स्त्रियों की समस्या के पीछे अधिकांश में स्त्रियों का ही हाथ होता है। जब तक स्त्रियों में यह समझ नहीं आएगी तब तक उनकी समस्याओं का समापन होना कठिन है। समाज के गलत रीति–रिवाजों, विधि निषेधों से छुटकारा पाने के लिए स्त्रियों को एकजुट होकर संघर्ष करना होगा। स्वयं को भी बदलना होगा और दूसरी स्त्रियों को इनमें से निकालने में से सहयोग करना होगा। भाभी जैसे चरित्र के माध्यम से लेखिका ने एक आदर्श प्रगतिशील स्त्री को सामने रखा है। जिसकी आज के समाज में अत्यन्त आवश्यकता है, जो पढ़ी लिखी है।

अतः उपरोक्त शोध–पत्र के माध्यम से इक्कीसवीं सदी के उपन्यासों की विवेचना के आधार पर समाज में स्त्री जीवन की समस्याओं के समाधान के प्रयास के सम्बन्ध में निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि स्त्री जीवन की परम्परागत गतिविधियों को इन उपन्यासों में बहुत बारीकी से जाँचा परखा गया है, और स्त्रियों की सामाजिक दशा तथा उनके व्यक्तित्व के अभ्युत्थान के लिए न केवल विचारों के नए क्षितिज दर्शाये गये हैं अपितु उन्हें व्यावहारिक रूप में भी सफल होता हुआ दिखाया गया है। स्त्री और पुरुष दोनों ही वर्गों के उपन्यासकारों ने इस दिशा में अपनी दृष्टि को सतत् प्रगतिशील रखा है और स्त्रियों को विभिन्न सामाजिक वर्जनाओं, विधि निषेधों आदि से सकारात्मक दृष्ट्रि के साथ सफलतापूर्वक संघर्ष करते हुए दिखाया है। इन उपन्यासों में स्त्रियों की निजता और अन्तश्चेतना के प्रति सजग होकर सदियों से मन–मस्तिष्क के कपाटों को खोलती हुई दिखाई गई है। वे समाज, इतिहास और संस्कृति की निर्मम व्याख्या ही नही करती बल्कि पुनर्मूल्याँकन के लिए प्रतिमान भी गढ़ती है। इक्कीसवीं सदी की आधुनिकता विज्ञानवाद, नारीवाद और सूचनाक्रान्ति से जागृति एवं समझदारी आयी है। अब वे परिवार व्यवस्था का कलपुर्जा मात्र न बनकर विकसित समाज का विचारशील ईकाई के रूप में प्रतिष्ठित हो रही है। शिक्षा की पर्याप्त व्यवस्था अवसर रोजगार आदि जैसे विकास विधायी कारकों के सहयोग से नारियों

को समाज में अपनी स्वतन्त्र पहचान बनाते दिखाना इन उपन्यासों की समाधानात्मक पहल कही जा सकती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ–सूची

1 मालती परुल कर – जहाँ पौ फटने वाली है, पृ0 135
2 मैत्रेयी पुष्पा, विजन, पृ0 141
3 मैत्रेयी पुष्पा, विजन, पृ0 75
4 इक्कीसवीं सदी की ओर – सं0 श्रीमती सुमनकान्त, पृ0 103
5 डॉ0 पूर्णिमा शर्मा – 'सौभाग्यवती भव', पृ0 25
6 डॉ0 पूर्णिमा शर्मा – 'सौभाग्यवती भव', पृ0 90
7 डॉ0 पूर्णिमा शर्मा – 'सौभाग्यवती भव', पृ0 110